कामना का शहर

ये हक़ाइक़ की चट्टानों से तराशी दुनिया
ओढ़ लेती है तिलिस्मों की रिदा रात गए
- जाँ निसार अख़्तर

हमारा दौर कामना के विस्फोट का दौर है। सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति — कंप्यूटर, इंटरनेट, मोबाइल फ़ोन, मीडिया पॉर्नोग्रफ़ी आदि आज शहरी समाज में दैहिक कामनाओं की पूर्ति के नए महत्वपूर्ण उपकरण बन गए हैं। उपभोक्ता संस्कृतियों में ज़बर्दस्त गतिशीलता और पूरब-पश्चिम की सीमाओं के आर-पार फ़ौरी अनुकरणीयता संभव हुई है। शहर के रिज, सार्वजनिक पार्कों, ऐतिहासिक क़िलों आदि में पनपते प्रेम, शहर की तंग गलियों के लालबत्ती क्षेत्र, कॉलगर्ल्स के अड्डे, मुहल्लों, दफ़्तरों आदि में बन रहे विवाहेतर संबंध आदि बेशक शहरी कामाचार के सामूहिक केंद्र होते हैं। इन सबके अलावा जनसुविधाओं के सार्वजनिक स्थलों पर दर्ज पॉर्न टीका-टिप्पणियाँ, यौन हेल्थ क्लिनिक, हिजड़े, समलैंगिक आदि शहर की सेक्शुऍलिटी का ताना-बाना गढ़ते हैं।

पीछे मुड़कर देखने पर लगता है कि शहरी सामाजिक स्थलों में मनोरंजन की नैतिकता भी पुराने ज़माने के मुक़ाबले काफ़ी ढीली पड़ी है। लेकिन नाइजीरियाई सिनेमाघरों का विश्लेषण बताता है कि इस परिवर्तन की प्रक्रिया आसान नहीं रही है। कुछ तबक़ों द्वारा सिनेमाघर ऐसे तनाव स्थल के रूप में देखे जाते थे जहाँ विभिन्न सामाजिक पायदानों/समुदायों/लिंगों/नस्लों के लोग मेलजोल के ज़रिए नैतिक संकट पैदा करते हैं। औपनिवेशिक सरकारों ने भी सिनेमाघरों को नियंत्रण की ज़मीन या उसके औज़ार के रूप में देखा। सिनेमाघर हैं तो फ़िल्में भी होंगी और उनका प्रचार-प्रसार भी होगा। तकनीकी विकास ने आज भले ही फ़िल्मों के प्रचार-प्रसार की तकनीक में क्रांतिकारी बदलाव ला दिए हों लेकिन उसका यह सफ़र पोस्टर से ही शुरू होता है। तकनीकी विकास के साथ-साथ इसके स्वरूप में तो दिलचस्प बदलाव आए ही हैं इसकी छपाई, डिज़ाइन, वितरण आदि इलाक़ों में भी नायाब प्रयोग हो रहे हैं।

शहर और बाज़ार का साथ चोली-दामन का है। पर चकाचौंध भरे शहरी बाज़ारों से अलग शहर के अलग-अलग मुहल्लों में लगने वाले हाटनुमा साप्ताहिक बाज़ार शहरी जनसंस्कृति का एक नया रूप गढ़ते हैं। बल्लियों-बाँसों पर टंगे कपड़े, पटरी या ज़मीन पर चटाई बिछाकर रखे प्लास्टिक के बर्तन, कॉस्मेटिक्स के सामान, मसालों के बोरे, चादरें, घर में काम आनेवाली रोज़मर्रा की अनगिनत चीज़ें यहाँ मिलती हैं भले ही उन पर छपे लेबल किसी मशहूर ब्रैंड की ख़ुशफ़हमी पैदा करें। बहरहाल, शहर के हाशिए पर चल रहे इस हाट-बाज़ार के कारोबारी पुलिसिया उत्पीड़न से बचते-बचाते न केवल धड़ल्ले से अपनी रोज़ी-रोटी चलाते हैं बल्कि आम लोगों की रोज़मर्रा की ज़रूरतें भी पूरी करते हैं। रोज़ी-रोटी और रोज़गार की तलाश में शहर आए लोग अपने साथ अपनी आस्था भी लेकर आते हैं। पूर्वांचल से दिल्ली में आकर बसे हिंदुओं के महत्वपूर्ण और पवित्र व्रत-त्योहारों में से एक है छठ पर्व। इन शहरी प्रवासियों के बीच सूर्य की पूजा-आराधना के इस पर्व का आयोजन पिछले कुछ वर्षों में और व्यापक हुआ है। शहर की प्रतिस्पर्धात्मक राजनीति ने भी इसे लपकने में कोई कसर नहीं छोड़ी है।

दिल्ली में ही मेट्रो की बड़ी धूम है। मुमकिन है आने वाले सालों में ऑटो ऐतिहासिक वस्तुएँ बन कर रह जाएँ। बेहतर होगा कि उनके पीछे छपे नारों में बयान ज़िंदगी के फ़लसफ़े को अभी दर्ज कर लिया जाए:

हम वो दिवाने हैं जो ताज़ा हवा लेते हैं।
खिड़कियाँ खोल के मौसम का मज़ा लेते हैं।।

शशिकांत